Chap- 8

अध्याय-अष्टम

प्रसाद काव्य में मिथक योजना

प्रस्तावना

प्रसाद काव्य में प्रयुक्त मिथक

प्रलय

देवसंस्कृति

देवासुर संग्राम

त्रिपुर संहार

मिथकीय पात्र -

- मनु
- श्रद्धा
- इड़ा

उर्वशी और पुरूरवा

करूणालय की कथा का मिथकीय विधान

प्रसाद काव्य में मिथक योजना

काव्य में मिथक का अपना एक विशेष महत्व है। डॉ० शंभुनाथ सिंह के मतानुसार 'मिथक को गप्प, मिथ्या और चमत्कारपूर्ण कक कथा मानने की बात या इसे आदिम मनोजगत या पौराणिक कथाओं तक सीमित कर देने की मान्यता काफी घिस चुकी है। प्रौद्योगिक समाज के आधुनिक मनुष्य की मिथक रचना की पद्धति पहले से भिन्न जरूर है और आज रूपक कथा की अपेक्षा संकेतों से अधिक काम चलाया जा रहा है, फिर भी मानवीय जीवन और कला में परंपरागत और नये मिथक पूरी तरह मौजूद हैं। हर व्यवस्था में बहुत से मामले होते हैं, जिन्हें गणित की तरह साफ ढंग से नहीं कहा जा सकता। मिथक द्वारा ऐसे मामले व्यक्त होते हैं। उसके शब्दों का अर्थ भीतर की मिथकीय संरचना में होता है, जिसे सामूहिक विश्वासों की एक परंपरा से जुड़े लोग बड़ी आसानी से समझ जाते हैं। वे उसकी संवेदना के साथ जल्दी घनिष्ठ हो जाते हैं। इसीलिए भी आधुनिक कला- साहित्य में मिथक का प्रयोग अधिक हुआ है। ज्यादा अच्छी कविताएं मिथक को आधार बनाकर लिखी गई हैं। मिथ कविता ने हर साहित्य में अपना ऊँचा स्थान बनाया है। वह अधिक लोगों तक पहुँची है। इसके माध्यम से किसी जाति के सामाजिक, मनोविज्ञान, अर्थव्यवस्था और कला के सौन्दर्यबोध को समझने में भारी मदद मिली है।'[1] इसी प्रकार से डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव इसके महत्व के विषय में लिखते हैं कि मिथक किसी भी संस्कृति की समझ और पहचान के लिए उपादेय हो सकते हैं, क्योंकि इनमें ज्ञानेन्द्रियों के जटिल और वैविध्यपूर्ण आद्य अनुभव-पुंज निहित हैं- वे अनुभव - पुंज जिनसे सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान, धर्म और दर्शन का उदय हुआ है। ये एक समय की आनुभाविक समग्रता को समाहित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि

वैध सामान्यीकरण (जेनरलाइजेशन) को महत्व दिया जाए, तो मिथकों का महत्व सर्वोपरि हो जाता है, क्योंकि इसमें समग्रता प्रस्तुत हुई है, न कि उसका अंश।[२] अनेक कवियों ने मिथक को आधार बनाकर कवितायें लिखी हैं। हरिऔध जी ने `प्रियप्रवास` में राधाकृष्ण के मिथक को नये रूप में प्रस्तुत किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने राम के मिथक को केन्द्र में रखते हुए `साकेत` की रचना की। तुलसीदास के रामचरित मानस के बाद यह दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त नवीन जी ने `उर्मिला`, अनूप शर्मा ने `शर्वाणी`, निराला ने `राम की शक्तिपूजा`, गिरिजादत्त शुक्ल `गिरीश` ने `तारकवध`, सोहनलाल द्विवेदी ने 'विषपान`, दिनकर जी ने `रश्मिरथी` और `उर्वशी`, अज्ञेय ने `असाध्यवीणा`, रामकुमार वर्मा ने `एकलव्य`, धर्मवीर भारती ने `अन्धायुग`, `कनुप्रिया`, नरेन्द्र शर्मा ने `द्रौपदी`, उदयशंकर भट्ट ने `कौन्तेय-कथा`, शिवप्रसाद सिंह ने `सत्य की लाश : शिव के कन्धे`, नरेश मेहता ने `संशय की एक रात`, बच्चन ने `बुद्ध और नाचघर`, नागार्जुन ने `भस्मांकुर` आदि की रचना विभिन्न मिथकीय प्रसंगों को लेकर की है।

प्रसाद जी के काव्य में भी मिथकों की सुन्दर योजना हुई है। हिन्दी साहित्य की महान कृति `कामायनी` में तो अनेक मिथकीय प्रसंगों का उल्लेख किया गया है। जलप्लावन की घटना, देव संस्कृति, देवासुर संग्राम, त्रिपुर-संहार इत्यादि मिथकीय घटनायें ही हैं। मनु, श्रद्धा और इड़ा भी मिथकीय पात्र ही हैं। इन सबसे सम्बंधित कथायें वेदों, पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत, रामायण और उपनिषदों में बिखरी पड़ी हैं। प्रसाद जी ने इन सब ग्रन्थों का आधार ग्रहण करके ही कामायनी की मिथकीय घटनाओं को प्रस्तुत किया है। डॉ० शंभुनाथ सिंह ने कामायनी को मिथक काव्य ही माना है। उनके

मतानुसार `कामायनी` में न वेदकथा है और धर्मगाथा । `कामायनी` मिथक पर आधारित काव्य है ।`[3] प्रसाद जी की प्रथम कृति `चित्राधार` में `उर्वशी` शीर्षक कविता है जिसमें इन्होंने उर्वशी और पुरूरवा के मिथकीय प्रसंग का वर्णन किया है । `करूणालय` की कथावस्तु का आधार भी मिथकीय प्रसंग ही है ।

`कामायनी` में सबसे पहला मिथक प्रलय का है । डॉ० शंभुनाथ सिंह के शब्दों में `प्रलय भारतीय जीवन का आदिम मिथक है । यह एक तरह की व्यवस्था के तहस-नहस हो जाने सभ्यता एवं संस्कृति के एक चक्र के पूरा हो जाने की ओर संकेत है । अफ्रीका तथा यूरोपीय देशों में प्रलय का मिथक मानवीय अपराधों के दण्ड के रूप में मिलता है । दक्षिणी चीन के फारमोसा के पौत्रों में प्रलय के मिथक भी अधिक संख्या में मिलते हैं । हिही ने फारमोसा, दक्षिण चीन, दक्षिण पूर्व एशिया तथा मलेशिया के इक्यावन प्रलय मिथकों पर विचार किया है ।`[4] भारतीय संस्कृति में भी प्रलय सम्बंधी मिथक मिलता है । वेदों में प्रलय कथाओं का उल्लेख नहीं के बराबर है । ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों और पुराणों जैसे पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णु पुराण, स्कंदपुराण, भविष्यपुराण, श्रीमद्भागत पुराण में प्रलय का विस्तार से वर्णन हुआ है । प्रसाद जी ने अपनी महान कृति `कामायनी` में कल्पना का समावेश कर इस प्रलय की घटना को अति सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है । `चिन्तासर्ग` इसका विस्तार से वर्णन हुआ है । `कामायनी` का प्रलय शतपथ ब्राह्मण के अधिक निकट है परन्तु प्रसाद जी ने पुराणों से भी कुछ-कुछ संकेत ग्रहण किए हैं । डॉ० शंभुनाथ सिंह के अनुसार - `कामायनी का प्रलय एक सांस्कृतिक प्रलय है, जो जनजीवन की पराधीनता के समुद्र में सारे नैतिक मूल्यों, मानवीय आशाओं, सामाजिक विकास तथा इन सबसे बढ़कर मनुष्य के मुक्त अस्तित्व को आत्मसात कर लेता है ।`[5]

कामायनी की कथा का आरम्भ ही प्रलय की प्राचीन ऐतिहासिक घटना से होता है । प्रलय से बचे आदि पुरुष मनु हिमालय की चोटी पर बैठकर प्रलय के भयंकर दृश्य को देख रहे हैं –

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह ।[6]

चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था । रोने की आवाजें भी आ रही थीं । आसमान से बिजली चूर- चूर होकर जमीन पर गिर रही थी । जिसके कारण भयंकर ध्वनियाँ उत्पन्न हो रही थीं –

हा-हा-कार हुआ क्रन्दनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर ;
हुए दिगन्त वधिर, भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर ।[7]

आसमान में बादल उमड़ते -घुमड़ते दिखायी पड़ रहे थे । इन्हें देखकर ऐसा मालूम पड़ता था मानों दिशाएँ जल रही हैं, जिससे घना धूम-समूह आकाश में इकट्ठा हो गया था । घिरा हुआ आसमान भयंकरता के साथ काँप रहा था और आँधी भी बहुत तेजी से चल रही थी -

दिग्दाहों से धूम उठे , या
जलधर उठे क्षितिज तट के ।
सघन गगन में भीम प्रकम्पन,
झंझा के चलते झटके ।[8]

इन दो उदाहरणों में प्रलय का जिस रूप में वर्णन हुआ है उससे बहुत कुछ मिलता- जुलता वर्णन विष्णु पुराण[६] और श्रीमद्भागत पुराण में भी हुआ है । श्रीमद्भागवत पुराण का प्रलय वर्णन देखिए —

ततः प्रचण्ड पवनो वर्षाणाा मधिकं शतम् ।
परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसावृतम् ।।
ततो मेघाकुलान्यांग चित्रवर्णान्यनेकशः ।
शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति नम सस्वनैः ।।[१०]

प्रलय के समय गरजती हुई लहरों का चित्रण कवि इस प्रकार से करता है —

उधर गरजतीं सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों- सी ;
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों - सी ।[११]

महाभारत के वन पर्व में भी गरजती हुई लहरों का वर्णन इसी रूप में मिलता है -

नृत्यमानमिवोर्मिभिः गर्जमानमिवाम्भसा ।
दोभ्यमाण महावातैः सा नोस्तस्मिन्महोदधौ ।।

अत्यधिक वर्षा के कारण समुद्र सीमाहीन हो गया था —

वेला क्षण- क्षण निकट आ रही
क्षितिज क्षीण, फिर लीन हुआ ;
उदधि डुबाकर अखिल धरा को
बस मर्यादा- हीन हुआ ।[१२]

समुद्र का ऐसा ही चित्रण श्रीमद्भागवत पुराण में हुआ है –

तत: समुद्र उद्वेल । सर्वत: प्लावयन् महीम् ।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भि: समदृश्यते ।।[१३]

बाल्मीकि रामायण में भी इसी प्रकार का वर्णन दिखाई देता है –

सहसाभूत् ततोवेगाद् भीमवेगो महोदधि: ।
योजनं व्यक्ति चक्रा मैं वेलामन्यत्र सम्प्लुवात् ।।[१४]

मनु के प्रलय में बचने के विषय में शतपथ ब्राह्मण में लिखा गया है कि मत्स्य ने मनु को पहले से ही प्रलय आनेकी सूचना दे दी थी और प्रलय आने पर मत्स्य ने अपने सींग के सहारे उनकी नाव को हिमालय पर पहुँचा दिया था। परन्तु प्रसाद जी ने शतपथ ब्राह्मण से केवल संकेत ही ग्रहण किया है और मत्स्य के योगदान को अलग रूप में व्यक्त किया है। प्रसाद जी की कल्पना है कि मनु की नाव मत्स्य के चपेटे से हिमालय की चोटी पर पहुँच गयी थी –

एक नाव थी, और न उसमें
        डाँड़े लगते, या पतवार ;
तरल तरंगों में उठ- गिरकर
        बहती पगली बारम्बार ।
लगते प्रबल थपेड़े धुंधले
        तटका था कुछ पता नहीं ;
कातरता से भरी निराशा
        देख नियति पथ बनी वहीं ।[१५]

मत्स्य ने मनु को सलाह दी कि वह अपनी नाव को वृक्ष से बांध दे ताकि पुन: जल में न बह जाये । कामायनी में भी प्रलय के पश्चात् नाव वृक्ष से बंधी हुई दिखायी देती है -

बंधी महा-वट से नौका थी
सूखे में अब पड़ी रही ;
उतर चला था वह जल- प्लावन,
और निकलने लगी मही । [१६]

डॉ० प्रेमशंकर तिवारी का मत है कि `कामायनी का जलप्लावन का चित्र ऐतिहासिक तथा पौराणिक दृष्टि से सार्थक है ---- एक पुरुष, हिमगिरि, नौका, प्रलय, प्रकृति आदि का चित्र शतपथ ब्राह्मण, पुराण आदि भारतीय ग्रन्थों के समीप है ।' [१७]

दूसरा मिथक देव संस्कृति से सम्बंधित है । यह देव संस्कृति बहुत शक्ति सम्पन्न थी । इसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी । देवों के राजा इन्द्र असुरों का नाश करके ही अन्तरिक्ष और पृथ्वी के राजा बने थे । धीरे- धीरे देवगण विलासप्रिय हो गए और अपने को अमर समझने लगे । उन्हें विश्वास था कि कोई भी उनका नाश नहीं कर सकता । परन्तु उनकी यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई । प्रलय के कारण इनका भी नाश हो गया । डॉ० शंभूनाथ सिंह इस देवजाति के विषय में लिखते हैं -` देव सभ्यता वैदिक देवताओं की सभ्यता है, जो सामाजिक संपर्क से कटकर विनिष्ट हो गयी । इस देव सभ्यता की कीर्ति, दीप्ति एवं शोभा अप्रितम थी । यह वैदिक देवता विलासिता के महानद में डूब गये । वे जन- भावनाओं से कट गये और समाज के विकास में असमर्थ हो जाने

के कारण पतन के शिकार हुए । प्रसाद जी ने जिस सभ्यता के पतन का चित्र वैदिक देव सभ्यता के मिथक के माध्यम से खींचा है उसका प्रधान तत्व है हिंसा, विलासिता और राजतंत्र की जनविमुखता ।[१८]

प्रसाद जी ने भी 'कामायनी' में जो देव संस्कृति का मिथक प्रस्तुत किया है उसका आधार महाभारत, ब्राह्मण ग्रन्थ, विभिन्न वेद और पुराण हैं ।

ऋग्वेद में देवजाति की शक्ति सम्पन्नता का वर्णन किया गया है । देवों के राजा इन्द्र के बल को देखकर पृथ्वी-आकाश और पर्वत भी थर-थर काँपते थे और प्रकृति भी भय से इन्द्र के चरणों में झुकी रहती थी ।[१६]

प्रसाद जी ने भी इसी ग्रंथ का आधार लेकर इसी प्रकार का वर्णन किया है —

> शक्ति रही हाँ शक्ति ; प्रकृति थी
> पद- तल में विनम्र विश्रान्त ;
> कँपती धरणी, उन चरणों से
> होकर प्रतिदिन ही आक्रान्त ।[२०]

यह देवजाति अत्यन्त विलासप्रिय हो गयी थी । इन्होंने अनेक प्रकार के सुखों का संग्रह कर लिया था -

> सुख, केवल सुख का वह संग्रह,
> केन्द्रीभूत हुआ इतना ;
> छाया पथ में नव तुषार का
> सघन मिलन होता जितना ।[२१]

ऋग्वेद में भी देवों के ऐश्वर्य का वर्णन हुआ है।[22]

देवगण संगीत प्रेमी थे। नाचना, गाना उन्हें बहुत ही पसन्द था। वह देवगण अपनी प्रेमिकाओं के साथ कुसुमित कुंजों में प्रेमपूर्वक एक दूसरे का आलिंगन किया करते थे। मधुर संगीत की ध्वनियाँ भी सुनाई पड़ती थी --

कुसुमित कुंजों में वे पुलकित
प्रेमालिंगन हुए विलीन ;
मौन हुई हैं मूर्च्छित तानें
और न सुन पड़ती अब बीन।[23]

ऋग्वेद[24] और ब्राह्मण ग्रंथों[25] में भी इनकी संगीतप्रियता और देवताओं का अप्सराओं के साथ विहार करते बताया गया है।

देवजाति दिव्य शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए पशुओं का वध करके यज्ञ भी किया करती थी -

देव-यजन के पशु यज्ञों की
वह पूर्णाहुति की ज्वाला,
जलनिधि में बन जलती कैसी
आज लहरियों की माला।[26]

ऋग्वेद में भी देवों को यज्ञ करते हुए चित्रित किया गया है।[27]

ये देवगण रत्नों से जड़े हुए ऊँचे-ऊँचे महलों में रहते थे। उन महलों के झरोखों से मदिरा की भांति उन्मत्त बना देनेवाले हवा के झोंके आते रहते थे।

रत्न-सौध के वातायन, जिनमें
आता मधु-मदिर समीर ;
टकराती होगी अब उनमें
तिमिंगलों की भीड़ अधीर ।[२८]

देवताओं के विशाल भवनों का वर्णन ऋग्वेद[२९], पद्मपुराण[३०], कूर्मपुराण[३१] आदि में भी हुआ है।

देवागनाएँ अपने शरीर को विभिन्न आभूषणों से सजाया करती थी -

वे अम्लान कुसुम सुरभित,
मणि-रचित मनोहर मालायें,
बनी श्रृंखला , जकड़ीं जिनमें
विलासिनी सुर- बालाएँ ।[३२]

ऋग्वेद में भी देवांगनाओं के आभूषणों का चित्रण मिलता है ।[३३]

देवासुर संग्राम भी एक मिथकीय प्रसंग है जिसका उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में प्राप्त होता है । डॉ० भगवतशरण उपाध्याय देवासुर संग्राम के विषय में लिखते हैं -`यह मिथक कथा कभी ऐतिहासिक सत्य थी, जो पुराणों में आ जाने के बाद विशेषकर समुद्र के बाद, उसमें मिलकर मिथक बन गयी । दजला-फरात की ऊपरी घाटी में राज्य करने वाले असुरों की विजय से सम्बंधित सैकड़ों अभिलेख , शिलाओं और स्तम्भों पर उत्कीर्ण मिले हैं । असुरों की अन्तिम राजधानी `निनैवे` (इराक के मोसुल के पास) थी । आर्यों से इनका युद्ध होता रहता था । ई० पू० चौदहवीं शताब्दी में उनमें जो सन्धि हुई उस पर साक्षी के रूप में ऋग्वैदिक देवताओं के नाम उकेरे गये ।[३४]

प्रसाद जी ने ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों का आधार लेकर कामायनी में इस मिथकीय घटना का वर्णन किया है । प्रसाद जी ने देवासुर संग्राम का मुख्य कारण देवताओं और असुरों में आस्थाओं की विभिन्नता को माना है । दोनों के जीवन दर्शन अथवा जीवन के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर था । एक प्राणों की पूजा करता था, शरीर में आत्मबुद्धि रखता था और मानता था कि जिस प्रकार भी हो सके जीवन की रक्षा की जाये । इसके विपरीत देवगण अपने को ही सर्वोपरि मानते थे । वे हमेशा इसी ओर सोचते थे कि किस प्रकार उनका कल्याण हो। वे विश्वास करते थे कि शक्ति स्त्रोत जीवन का उदगम आनन्द है -

जीवन का लेकर नव विचार
जब चला द्वंद था असुरों में प्राणों की पूजा का प्रचार
उस ओर आत्म-विश्वास निरत सूर-वर्ग कह रहा था पुकार -
"मैं स्वयं सतत आराध्य आत्म-मंगल उपासना में विभोर
उल्लासशील मैं शक्ति-केन्द्र, किसकी खोजूँ फिर शरण और
आनंद उच्छलित शक्ति स्रोत जीवन विकास वैचित्र्य भरा
अपना नव-नव निर्माण किये रखता यह विश्व सदैव हरा "
प्राणों के सुख साधन में ही, संलग्न असुर करते सुधार
नियमों में बँधते दुर्निवार । 35

असुर लोग तुच्छ शरीर की पूजा किया करते थे । देवगण आत्मवादी होते हुए भी अपने को बुद्धिमान समझते थे । दोनों अपनी- अपनी आस्थाओं पर अटल थे । दोनों ही तर्क के द्वारा अपने दृष्टिकोण की पुष्टि किया करते थे । जब असुर और देवगण एक दूसरे को तर्क के द्वारा पराजित न कर सके तो उन्हें शस्त्र का सहारा लेना पड़ा । दोनों में संघर्ष शुरू हुआ -

था एक पूजता देव दीन
दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण
दोनों का हठ था दुर्निवार, दोनों ही थे विश्वास-हीन
फिर क्यों न तर्क को शस्त्रों से वे सिद्ध करें- क्यों हो न युद्ध
उनका संघर्ष चला अशान्त वे भाव रहे अब तक विरुद्ध ।[३६]

प्रसाद जी ने इस द्वंद्व को मानव मन की सत्-असत् प्रवृत्तियों के रूप में चित्रित किया है । डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव के मतानुसार -"प्रसाद भारतीय और पाश्चात्य भौतिकवाद को इसी द्वंद्व के पक्ष- प्रतिपक्ष के रूप में देखते हैं जो सामाजिक सन्दर्भ में हृदय- बुद्धि(श्रद्धा-इड़ा) और व्यक्ति संदर्भ में सत्-असत् प्रवृत्तियों की समकक्षता के रूप में होता है ।"[३७]

प्रसाद जी ने इन दोनों के संघर्ष में सत् प्रवृत्ति की विजय दिखायी है -

देवों की विजय ; दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा,
संघर्ष सदा उर- अंतर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा ।[३८]

एक अन्य मिथक त्रिपुर या त्रिकोण संहार सम्बंधी है । त्रिपुर की कथायें वेदों, पुराणों, उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त होती हैं । ऋग्वेद में अग्नि को त्रिधातु कहा गया है ।[३९] यजुर्वेद में अग्नि को लोहमय, रजतमय तथा स्वर्णमय गृहों में निवास करने वाली कहकर सम्बोधित किया गया है । शतपथ ब्राह्मण में इसके सम्बंध में एक कथा मिलती है । 'ऐतरेय ब्राह्मण' में त्रिपुर कल्पना

का प्रारंभिक सूत्र प्राप्त होता है । इसके अनुसार शक्तिशाली असुरों ने देवताओं को हराकर पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में लौह, रजत और स्वर्ण के तीन अभेद्य दुर्गों की रचना की थी । देवताओं ने `उपसदों` की सहायता से इनका विनाश कर दिया था ।

नारद पुराण, भगवत पुराण, श्री विष्णु पुराण, शिव पुराण और लिंग पुराण में भी त्रिपुर की कथा का विवेचन हुआ है । नारद पुराण[४०] और भागवत पुराण[४१] में सत्व, रज और तम नामक तीन गुणों का उल्लेख किया गया है । शिव पुराण मेंभी इसका विस्तृत वर्णन हुआ है ।[४२] रामायण[४३] और महाभारत[४४] में भी इस प्रसंग का उल्लेख हुआ है ।

शैवागमों में भी त्रिपुर का उल्लेख हुआ है । इसमें त्रिपुर के तीन कोण माने गये हैं जिन्हें इच्छा, ज्ञान और क्रिया कहते हैं, इसमें तीन शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं जिन्हें इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति कहा जाता है । इन तीनों शक्तियों के अलग- अलग कार्य हैं । त्रिलोक की संचालिका त्रिपुरादेवी बतायी गयी है ।

प्रसाद जी ने इन सब ग्रंथों के आधार पर ही `कामायनी` के `रहस्य-सर्ग में इसका विस्तार से वर्णन किया है । परन्तु उनका त्रिपुर वर्णन शैवदर्शन के अधिक निकट है । डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के मतानुसार -`प्रसाद जी ने `कामायनी` में त्रिपुर या त्रिकोण का वर्णन किया है । वैदिक एवम् लौकिक साहित्य से तो आपने तीनों पुरों के रंगों की कल्पना ली है और उनके आधार पर ही इच्छा के भावलोक को रागारुण, ज्ञानलोक को श्वेत तथा कर्मलोक को श्याम रंग का बतलाया है, जो स्पष्टत: स्वर्ण, रजत एवं लोहे के पुरों से सम्बंध

रखते हैं, साथ ही शैवागमों से आपने इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया की कल्पना ली है और उसी के आधार पर तीनों लोकों का वर्णन करते हुए इच्छा लोक में भाव की प्रधानता, कर्म लोक में नाना प्रकार की ऐषणाओं से व्याप्त कर्मों की प्रधानता तथा ज्ञानलोक में शुद्धाशुद्ध मार्ग की खोज और शुष्क ज्ञानार्जन की प्रधानता बतलाई है। इसके अनन्तर तीनों की पृथकता के कारण ही संसार के विडम्बनापूर्ण जीवन की ओर भी संकेत किया है। पुन: 'त्रिपुरारहस्य' के आधार पर आपने श्रद्धा की मुस्कान द्वारा तीनों को मिलाकर इन तीनों लोकों की पृथकता दूर की है।[४५]

इस त्रिपुर के तीन कोण हैं पहला इच्छा दूसरा क्रिया और तीसरा ज्ञान। इन्हीं तीन कोणों के कारण इसे त्रिकोण भी कहा जाता है। ये तीनों कोण इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति से ओत-प्रोत रहते हैं। श्रद्धा मनु को एक-एक करके तीनों लोकों का रहस्य समझाती है। सबसे पहला लोक इच्छा शक्ति का है, जिसे प्रसाद जी ने लाल रंग का बतलाया है। इसमें भाव की प्रधानता होती है -

वह देखो रागारूण है जो
उषा के कंदुक सा सुन्दर ;
छायामय कमनीय कलेवर
भावमयी प्रतिमा का मंदिर।[४६]

इस लोक में पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ कान, त्वचा, रसना, आँख, नासिका आदि अपने-अपने कार्य की खोज में इस प्रकार से चक्कर काटती हुई दिखायी देती हैं जिस प्रकार से रंग-बिरंगी तितलियाँ फूलों के आस-पास मँडराती हैं -

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की
पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ ;
चारों ओर नृत्य करती ज्यों
रूपवती रँगीन तितलियाँ । [४७]

इस लोक का संचालन माया नामक शक्ति करती है -

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक
चल-चित्रों -सी संसृति छाया ;
जिस आलोक बिंदु को घेरे
वह बैठी मुसक्याती माया । [४८]

दूसरा गोल आकार वाला कर्मलोक है जो कि काले रंग का होता है। यह अंधकार के समान होता है। इसलिए इसके रहस्य के बारे में जानना बहुत ही मुश्किल है -

मनु यह श्यामल कर्मलोक है
धुंधला कुछ-कुछ अंधकार -सा ;
सघन हो रहा अविज्ञात यह
देश मलिन है धूम धार-सा । [४९]

इस कर्मलोक का संचालन नियति अपनी इच्छा के अनुसार करती है तथा इस लोक में मनुष्य नयी- नयी एषणाओं (पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा) से बेचैन दिखायी पड़ते हैं। इस प्रकार से कर्म का एक चक्र सा चलता रहता है।

कर्म-चक्र सा घूम रहा है
यह गोलक, बन नियति-प्रेरणा ;

सबके पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा ।[५०]

इस कर्म लोक के सभी प्राणी अपने- अपने काम में लीन दिखायी देते हैं । एक पल के लिए भी वह लोग विश्राम नहीं करते । इस लोक के प्राणियों में यश प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होती है । इस इच्छा की पूर्ति करने के लिए चाहे उन्हें कोई बुरे से बुरा कार्य भी क्यों न करना पड़े -

बड़ी लालसा यहाँ सुयश की
अपराधों की स्वीकृति बनती ;
अंध प्रेरणा से परिचालित
कर्ता में करते निज गिनती ।[५१]

तीसरा लोक ज्ञान लोक है, जो कि श्वेत रंग का होता है । इस लोक में निवास करने वाले प्राणी सुख और दु:ख दोनों से ही निष्पक्ष (विरक्त) रहते हैं तथा यहाँ पर बुद्धि का चक्र चलता रहता है -

प्रियतम ! यह तो ज्ञान क्षेत्र है
सुख- दुख से है उदासीनता ;
यहाँ न्याय निर्मम, चलता है
बुद्धि चक्र, जिसमें न दीनता ।[५२]

इस ज्ञान लोक में मनुष्य ब्रह्म और जगत् के अस्तित्व के बारे में विचरण किया करते हैं । कुछ ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तो कोई जगत् के अस्तित्व को । कुछ दोनों में भेद नहीं मानते हुए दोनों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तथा अपना सम्बंध किसी से न जोड़ते हुए मोक्ष प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं ।

अस्ति नास्ति का भेद, निरंकुश
करते ये अणु तर्क युक्ति से ;
ये निस्संग, किन्तु कर लेते
कुछ सम्बंध-विधान मुक्ति से ।[५३]

इस लोक में बुद्धि का राज्य होता है । वह साधना के आधार पर जिसे जितनी सिद्धि मिलनी चाहिए मनुष्य को देती है परन्तु फिर भी मनुष्य तृप्त दिखायी नहीं देता -

यहाँ प्राप्त मिलता है केवल
तृप्ति नहीं, कर भेद बाँटती ;
बुद्धि, विभूति सकल सिकता-सी
प्यास लगी है ओस चाटती ।[५४]

इन तीनों लोकों को त्रिपुर या त्रिकोण कहा जाता है । अन्त में श्रद्धा मनु को बताती है कि यह तीनों लोक एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं । एक लोक का दूसरे लोक से कोई सम्बंध नहीं है -

यही त्रिपुर है देखा तुमने
तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने,
अपने केन्द्र बने दुख-सुख में
भिन्न हुए हैं ये सब कितने ।[५५]

परन्तु अन्त में ये तीनों लोक एक हो जाते हैं -

महा ज्योति रेखा-सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें ;

वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें ।[५६]

इस प्रकार से प्रसाद जी ने तीनों लोकों का वर्णन करके त्रिपुर का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है । डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव के अनुसार-`कामायनी` में श्रद्धा के शक्ति रूप की कल्पना में त्रिपुर सम्बंधी शैव और शाक्त दोनों धारणाओं का संयोजन हुआ है । इच्छा , ज्ञान और क्रिया के तीन बिन्दुओं को प्रसाद ने तीन लोकों के रूप में प्रस्तुत किया है । तीन बिन्दुओं को त्रिभुवन के प्रतिनिधि `त्रिदिक विश्व` के रूप में प्रस्तुत करके प्रसाद ने मिथकीय प्रतीकवत्ता की पुनर्रचना की है ।[५७]

मनु, श्रद्धा और इड़ा मिथकीय पात्र हैं । इन सभी पात्रों से सम्बंधित आख्यान भारतीय ग्रंथों में बिखरे पड़े हैं ।

मानवों के आदि पुरुष वैवस्वत मनु के सम्बंध में वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों और उपनिषदों में विविध वृतान्त प्राप्त होते हैं । परन्तु प्रसाद जी ने मनु के चरित्र का उद्घाटन शतपथ ब्राह्मण और श्रीमद्भागवत् के आधार पर किया है । वह कामायनी के नायक हैं । सारी कथा इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती है । प्रसाद जी ने मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही माना है । मनु का ऐतिहासिक चरित्र शतपथ ब्राह्मण के आधार पर ही प्रस्तुत किया है । ब्राह्मण ग्रंथों में मनु को आदि पुरुष माना है ।[५८] उन्हें मनुष्यों का राजा भी कहा गया है ।[५६] कई स्थानों पर मनु को प्रजापति कहकर भी सम्बोधित किया गया है । प्रसाद जी ने `कामायनी` में मनु को मानवों के आदि पुरुष के रूप में ही चित्रित किया है । `कामायनी` के आमुख में प्रसाद जी लिखते हैं कि आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु

का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है।[६०] प्रसाद जी ने कई स्थानों पर मनु को प्रजापति कहा है --

प्रजा तुम्हारी, तुम्हें प्रजापति सबका ही गुनती हूँ मैं।[६१]

\+ + +

आह प्रजापति होने का अधिकार यही क्या !
अभिलाषा मेरी अपूर्ण ही सदा रहे क्या ?[६२]

\+ + +

इड़े ! मुझे वह वस्तु चाहिए जो मैं चाहूँ,
तुम पर हो अधिकार, प्रजापति न तो वृथा हूँ।[६३]

ऋग्वेद में मनु के अनेक रूप देखने को मिलते हैं जैसे तपस्वी मनु, हिंसक यजमान मनु, प्रजापति मनु और यन्त्रद्रष्टा ऋषि मनु। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में मनु को इन सभी रूपों में चित्रित किया है। ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में मनु को ही सर्वप्रथम यज्ञकर्त्ता माना गया है। प्रसाद जी ने भी मनु को प्रलय के पश्चात् प्रथम यज्ञ करने वाला बताया है -

शुष्क डालियों से वृक्षों की
अग्नि अर्चियाँ हुईं समिद्ध ;
आहुति की नव धूम गंध से
नभ कानन हो गया समृद्ध।[६४]

ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों और महाभारत में मनु को तपस्वी रूप में चित्रित किया गया है।

कामायनी में तपस्वी मनु का चित्र देखिए -

मनन किया करते वे बैठे
ज्वलित अग्नि के पास वहाँ ;
एक सजीव तपस्या जैसे
पतझड़ में कर वास रहा ।[६५]

इन्हीं ग्रंथों के अनुसार मनु का प्रथम यज्ञ कल्याणकारी भावों से युक्त पाकयज्ञ था । कामायनी में भी मनु का प्रथम यज्ञ पाकयज्ञ ही था -

पाक यज्ञ करना निश्चित कर
लगे शालियों को चुनने ;
उधर वह्नि ज्वाला भी अपना
लगी धूम पट थी बुनने ।[६६]

कामायनी में मनु द्वारा आकुलि-किलात की प्रेरणा से श्रद्धा द्वारा पालित पशु की बलि देकर यज्ञ करने की जो घटना का उल्लेख है उसका आधार यजुर्वेद, ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रंथ ही हैं । यजुर्वेद में यज्ञ-यूप खड़ा करके पशुओं को उससे बाँधकर वध करने का बहुत ही विस्तार से वर्णन किया गया है । शतपथ ब्राह्मण में भी इसी प्रकार का विवेचन मिलता है । उसमें सुरा की बहुत प्रशंसा भी की गयी है तथा इसका पान करके देवों को मदोन्मत दिखाया है । यज्ञ के साथ सुरा और सोम पीने का विवेचन ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है । इन्हीं ग्रंथों से संकेत ग्रहण कर प्रसाद जी ने मनु को यज्ञ करते हुए तथा सोमरस और पुरोडाश का सेवन करते हुए दिखाया है -

पुरोडाश के साथ सोम का
पान लगे मनु करने,
लगे प्राण के रिक्त अंश को
मादकता से भरने ।[६७]

श्रद्धा :

श्रद्धा का उल्लेख वेदों, पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत और उपनिषदों में मिलता है। प्रसाद जी ने इन्हीं ग्रंथों से संकेत ग्रहण कर कामायनी में श्रद्धा को चित्रित किया है। श्रद्धा 'कामायनी' की नायिका है। इस महान कृति का नामकरण इसी के नाम पर किया गया है। ऋग्वेद के बालखिल्य सूक्त[६८], यजुर्वेद[६९] और शतपथ ब्राह्मण[७०] में श्रद्धा को सूर्य की पुत्री बताया गया है। पुराणों में श्रद्धा को दक्ष प्रजापति की पुत्री कहा गया है।[७१] वेद का आधार ग्रहण कर सायण ने श्रद्धा को काम की पुत्री कहा है। प्रसाद जी ने इसी आधार पर श्रद्धा को काम की पुत्री माना है। जहाँ तक श्रद्धा के विवाह का प्रश्न है विभिन्न ग्रंथों में इसके बारे में अलग- अलग लिखा गया है। कहीं पर श्रद्धा को धर्म की पत्नी माना गया है तो कहीं पर सत्य की। प्रसाद जी ने श्रद्धा को पत्नी के रूप में चित्रित किया है। शतपथ ब्राह्मण में श्रद्धा को मनु की पत्नी ही कहा गया है। इस ग्रंथ में आकुलि किलात द्वारा पशुयज्ञ के प्रसंग में यजमान मनु को दो बार श्रद्धादेव कहकर सम्बोधित किया गया है। भागवतपुराण में भी मनु- श्रद्धा को पति-पत्नी ही माना गया है। भागवत पुराण में तो स्पष्ट शब्दों में इस बात का उल्लेख है कि मनु ने दस पुत्र अपनी पत्नी श्रद्धा से उत्पन्न किए। इस प्रकार से प्रसाद जी श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर ही श्रद्धा को मनु की पत्नी रूप में ग्रहण किया है।

ऋग्वेद में श्रद्धा को ऋषिका रूप में स्वीकार किया गया है। कामायनी की श्रद्धा हृदय सत्ता के सुन्दर सत्य को खोजने वाली ऋषिका ही है।

श्रीमद्भागवत में प्रलय के पश्चात् मनु श्रद्धा के संयोग से मानव जाति की शुरुआत करते हैं। 'कामायनी' में भी इसी प्रकार का उल्लेख किया गया है -

बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल ;
विश्व-भर सौरभ से भर जाये
सुमन के खेलो सुन्दर खेल ।[७२]

इसके अतिरिक्त श्रद्धा का मनु को आत्मसमर्पण करना और मनु का श्रद्धा को असहनीय स्थिति में छोड़ जाना आदि प्रसाद जी की अपनी कल्पना ही है । अन्त में श्रद्धा आनंद- पथ प्रदर्शिका के रूप में प्रस्तुत होती है । मनु के आनन्द पथ की प्रदर्शिका श्रद्धा का इस रूप में वर्णन उपनिषद और गीता के आधार पर प्रस्तुत किया गया है ।

इड़ा :

कामायनी के प्रमुख पात्रों में इड़ा का भी विशेष महत्व है । प्रसाद जी ने इसके चित्रण के लिए वैदिक साहित्य का अधिक सहारा लिया है । इड़ा का उल्लेख विभिन्न ग्रंथों में प्राप्त होता है । ऋग्वेद में इड़ा को मनु की पथ-प्रदर्शिका और मनुष्य पर शासन करनेवाली[७३], मनुष्य को चेतना प्रदान करनेवाली[७४], यूथ माता[७५] कहा गया है । अथर्ववेद में इड़ा को राष्ट्र की पोषिका और संरक्षिका[७६] तथा प्रजा को सुख प्रदान करनेवाली[७७] ~~तथा प्रजा को सुख प्र-~~ बतलाया है । शतपथ ब्राह्मण और पुराणों में मनु द्वारा किए गए मैत्रावरूण यज्ञ से इड़ा की उत्पत्ति मानी गयी है । शतपथ ब्राह्मण में तो इड़ा को मनु की दुहिता माना गया है ।

प्रसाद जी ने इन सब ग्रंथों के आधार पर ही `कामायनी` में इड़ा की कल्पना की है । परन्तु उन्होंने इड़ा को मनु की `आत्मजा-प्रजा` कहा है -

अरे आत्मजा प्रजा !
पाप की परिभाषा बन शाप उठी ।[७८]

अपनी ही आत्मजा-प्रजा पर मनु द्वारा किए गए अत्याचार के समान घटनाएँ विभिन्न प्राचीन ग्रंथों में भी प्राप्त होती हैं । ऐतरेय ब्राह्मण में इसी प्रकार की एक कथा का उल्लेख मिलता है जिसमें प्रजापति अपनी, दुहिता के साथ अनैतिक व्यवहार करता है, जिसे देखकर देवगण भी क्षुब्ध हो उठते हैं और प्रजापति को दंडित करने के लिए किसी व्यक्ति की खोज में लग जाते हैं । परन्तु उन्हें कोई भी व्यक्ति दिखायी नहीं देता तो वह रौद्र शरीर का निर्माण करते हैं, जिसे भूतवन कहा गया । देवताओं ने उस भूतवन को कहा कि वह प्रजापति को दण्ड दे । रौद्र मूर्ति पशुओं का आधिपत्य माँगती है जिसे देवगण पशुपति बना देते हैं और रौद्र मूर्ति को 'पशुमान' कहा जाने लगा । बाद में यही मूर्ति प्रजापति के शरीर को बेंध डालती है ।[७९] इसी प्रकार की कथा मत्स्य पुराण और शतपथ ब्राह्मण में भी प्राप्त होती है । बृहदारण्यक उपनिषद में यह कथा कुछ अलग ही रूप में प्रस्तुत की गयी है ।

मनु द्वारा इड़ा पर बलात्कार करने की चेष्टा करना और उसके पश्चात् शिव का रौद्र रूप धारण करना और मनु को दंडित करना, यह सभी प्रसंग वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में प्राप्त होते हैं । इन्हीं ग्रंथों के आधार पर प्रसाद जी ने 'कामायनी' में इस घटना का उल्लेख किया है । देवताओं के साथ सारस्वत प्रदेश की जनता भी विद्रोह कर देती है, जिनका नेतृत्व असुर पुरोहित आकुलि-किलात करते हैं । इसका चित्रण न तो पुराणों में है और न ही ब्राह्मण ग्रंथों में । यह तो प्रसाद जी की अपनी कल्पना है । अन्त में श्रद्धा का अपने पुत्र कुमार को इड़ा को सौंप देने का प्रसंग भी प्रसाद जी की अपनी कल्पना ही है ।

उर्वशी और पुरूरवा की प्रेमकथा बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में ही इसका सर्वप्रथम विवेचन मिलता है। तत्पश्चात शतपथ ब्राह्मण , रामायण, महाभारत, पुराणों और कालिदास कृत विक्रमोर्वशीय में भी इसका उल्लेख हुआ है। परन्तु सभी ग्रंथों में कथा भिन्न-भिन्न रूपों में मिलती है।

ऋग्वेद में ये कथा बहुत संक्षिप्त रूप में मिलती है। राजा के पास से उर्वशी के प्रस्थान का विवेचन करते हुए दोनों के सम्वाद प्रस्तुत किए गए हैं।

महाभारत और स्कन्दपुराण में भी यह कथा बहुत ही संक्षिप्त रूप में दी गयी है।

शतपथ ब्राह्मण में यह कथा इस प्रकार से दी गयी है। पुरूरवा उर्वशी से प्रणय निवेदन करते हैं जिसे उर्वशी स्वीकार कर लेती है, किन्तु कुछ शर्तें पुरूरवा के सम्मुख रखती है। पहली यह कि- पुरूरवा प्रतिदिन केवल तीन बार ही उसका आलिंगन करेंगे और दूसरी उसकी इच्छा के विरूद्ध कभी समागम नहीं करेंगे और तीसरी वे कभी भी नग्नावस्था में उसके सामने नहीं आयेंगे। इन शर्तों के अनुसार काफी समय तक उर्वशी और पुरूरवा पति-पत्नी के रूप में साथ-साथ रहते हैं। परन्तु गंधर्वों के षडयंत्र के परिणामस्वरूप राजा पुरूरवा का उर्वशी से वियोग हो जाता है। उर्वशी के पास दो मेष-शावक बंधे होते हैं जिन्हें चुराने के लिए गंधर्व विश्वावसु को भेजते हैं। जिस समय विश्वावसु उर्वशी के मेष चुरा रहा होता है उस समय पुरूरवा नग्नावस्था में होते हैं। पुरूरवा आहट पाकर नग्नावस्था में ही विश्वावसु को पकड़ने दौड़ते हैं। गन्धर्व उसी समय प्रकाश कर देते हैं। उर्वशी उन्हें नग्नावस्था में देख लेती है। शर्त के टूटने पर उर्वशी पुरूरवा को छोड़कर स्वर्गलोक चली जाती है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा गया है कि इस घटना के बाद भी उर्वशी पुरूरवा से मिलती रहती है और अन्त में उर्वशी के कहने पर ही राजा

पुरूरवा गंधर्व होने का वरदान माँगते हैं और गंधर्व होकर उर्वशी के साथ गंधर्वलोक पहुँच जाते हैं ।

श्रीमद्भागवत पुराण, विष्णु पुराण में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है । ब्रह्म पुराण में इन शर्तों का कोई भी विवेचन नहीं किया गया है । उर्वशी पुरूरवा के सात पुत्रों का वर्णन मिलता है ।

प्रसाद जी ने इन सभी ग्रंथों का आधार लेकर ही `चित्राधार` में उर्वशी की कथा को नये रूप में प्रस्तुत किया है । वह प्राचीन ग्रंथों वाली उर्वशी नहीं है जो भोग-विलास के लिए राजा पुरूरवा के सम्मुख आत्म समर्पण कर देती है और न ही वह सामान्य नर्तकी ही हैं बल्कि आत्मनिष्ठ, वाग्विदग्धता, तर्कशील, स्वच्छन्द मनोवृत्ति और निर्भीकता आदि गुणों से युक्त एक शील नारी हैं । वह राजा पुरूरवा से कहती है -" मैं क्या दूसरों के विलास की सामग्री बनूँगी ? क्या मेरे हृदय में अपना कुछ नहीं है ? क्या वह दूसरों से कम है ?" - राजन ! स्मरण रहे कि मेरी स्वतंत्रता नहीं छीनी जा सकती । इसके अतिरिक्त वह करूणा की मूर्ति और सेवा परायण-शील, स्वाभिमानी नारी भी है । इस चंपू में प्रसाद जी ने प्रेम का त्रिकोण प्रस्तुत किया है । उर्वशी इसका शीर्ष बिंदु है । पुरुरवा और केयूरक उर्वशी को प्राप्त करना चाहते हैं । उर्वशी राजा पुरूरवा को छोड़ अपने शैशव सहचर केयूरक को अपनाती है । इस प्रकार से प्रसाद जी ने परंपरागत कथानक को न अपनाकर इस कथा को नया मोड़ दिया है ।

इस कथा का प्रारंभ संध्या वर्णन से होता है जो पूर्णतया परम्परागत है । इसके अतिरिक्त सौंदर्य चित्रण में भी कोई नवीनता दृष्टिगोचर नहीं होती ।

प्रसाद जी की कृति `करूणालय` की कथावस्तु का आधार भी मिथकीय प्रसंग ही है । इसकी कथावस्तु ऋग्वेद, तैत्तरीय संहिता, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण,

रामायण, महाभारत, ब्रह्मपुराण, देवी भागवत आदि वैदिक और पौराणिक साहित्य में बिखरी पड़ी है। ऋग्वेद में लिखा गया है कि शुनः शेफ वरूणापाश से आबद्ध हो जाने पर उन्हीं की प्रार्थना से मुक्त हुआ था और यज्ञ-स्तूप से बंधे शुनः शेफ ने प्रजापति, अग्नि, सविता, विश्वदेव, इन्द्र,उपस इत्यादि देवताओं से भी प्रार्थना की थी। ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तरीय संहिता और देवी भागवत में लिखा गया है कि राजा हरिश्चन्द्र पुत्र बलिदान का वचन भूल जाते हैं जिसके कारण वह जलोदरा नामक रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण और देवी भागवत के अनुसार स्वयं जाकर रोहित को कानन-बिहार के लिए प्रेरित भी करते और उसे मना करते हैं कि वह जलोदरा ग्रस्त पिता से न मिले। तारिणी और सुव्रता का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। 'हरिवंश पुराण' में तो विश्वामित्र को शुनः शेफ का मामा बताया गया है। देवी भागवत के अनुसार शुनः शेफ अपने भावी पिता का भी निर्णय करता है। वह सोचता है जिस व्यक्ति ने अपने पुत्र को बेचकर सौ गायें ली हो, वह कभी भी उसका पिता नहीं हो सकता। वसिष्ठ की प्रेरणा से ही वह विश्वामित्र को अपना पिता मान लेता है। विश्वामित्र भी शुनः शेफ को अपना पुत्र मान लेते हैं और उसके पश्चात उसका देवरथ रखते हैं।

प्रसाद जी ने इस कथा का आधार इन्हीं ग्रंथों से ग्रहण करते हुए अपनी कल्पना के सहारे इस कथा को नये रूप में प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार से प्रसाद जी का काव्य विभिन्न प्रकार के मिथकों से ओत-प्रोत है।

सन्दर्भ :

१- डॉ० शंभुनाथ सिंह : मिथक और आधुनिक कविता, पृ० ३
२- डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृ० ११
३- डॉ० शंभुनाथ सिंह, मिथक और आधुनिक कविता, पृ० १३०
४- वही, पृ० १२३
५- वही, पृ० १२३
६- प्रसाद, कामायनी, पृ० १५
७- वही, पृ० २४
८- वही, पृ० २४
९- श्री विष्णु पुराण: पृ० ५१४ से ५१६ तक
१०- श्रीमद्भागवत पुराण, १२।४।११-१३
११- प्रसाद, कामायनी, पृ० २५
१२- वही, पृ० २५
१३- श्रीमद्भागवत पुराण, २४।४१
१४- बाल्मीकि रामायण : युद्ध कांड-७।१५
१५- प्रसाद, कामायनी, पृ० २६
१६- वही, पृ० १६
१७- 'आलोचना', जुलाई १९५३, पृ० ३३
१८- डॉ० शंभुनाथ सिंह, मिथक और आधुनिक कविता, पृ० १२५-१२६
१९- ऋग्वेद : १।११।४, २।१२।१३, ४।१७।२
२०- प्रसाद : कामायनी, पृ० २०
२१- वही, पृ० २०

२२- ऋग्वेद : २।१२।७,२।१३।१५
२३- प्रसाद : कामायनी, पृ० २१
२४- ऋग्वेद : २।४३।३, १०।३२।४,१०।७।४।४
२५- शतपथ ब्राह्मण : ६।४।१।७-१२
२६- प्रसाद : कामायनी, पृ० २३
२७- ऋग्वेद : १।१६४।५०
२८- प्रसाद : कामायनी, पृ० २३
२९- ऋग्वेद : ४।३०।२०,१।१६६।८,७।१५।१४
३०- पद्मपुराण : १५।१० सृष्टि खंड
३१- कूर्म पुराण (अध्याय ४९)
३२- प्रसाद : कामायनी, पृ० २३
३३- ऋग्वेद : ८।७८।३, १।१२३।१४
३४- डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य : पृ० १६१ से उद्धृत ।
३५- प्रसाद : कामायनी, पृ० १५५
३६- वही, पृ० १५५
३७- डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य : पृ० १६२
३८- प्रसाद : कामायनी, पृ० १०५
३९- ऋग्वेद : ३।२६।७
४०- संक्षिप्त नारदपुराण : पृ० ३४३
४१- श्रीमद्भागवत पुराण : पृ० ८४१
४२- शिवपुराण: रूद्र संहिता खण्ड ४ अ० १३-१८
४३- रामायण : बालकाण्ड: श्लोक ३,४,६,१२
४४- राणाप्रसाद शर्मा : पौराणिक कोश: पृ० २०७

४५- डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना : कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन : पृ० ७५

४६- प्रसाद : कामायनी, पृ० २४१

४७- वही, पृ० २४२

४८- वही, पृ० २४३

४९- वही, पृ० २४४

५०- वही, पृ० २४५

५१- वही, पृ० २४६

५२- वही, पृ० २४८

५३- वही, पृ० २४८

५४- वही, पृ० २४८

५५- वही, पृ० २५०

५६- वही, पृ० २५०

५७- डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव : मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य : पृ० १५७

५८- तैत्तरीय ब्राह्मण : २।३।८।३, शतपथ ब्राह्मण १।१।४।४

५९- शतपथ ब्राह्मण : १३।४।३।३

६०- प्रसाद : कामायनी आमुख : पृ० ६

६१- वही, पृ० ८२

६२- वही, पृ० १८८

६३- वही, पृ० १८८

६४- वही, पृ० ४१

६५- वही, पृ० ४१

६६- वही, पृ० ४०

६७- वही, पृ० ११६

६८- ऋग्वेद : ६।१।६

६९- यजुर्वेद : १६।४

७०- शतपथ ब्राह्मण : १२।७।३।११

७१- मार्कण्डेय पुराण : ५०।१६।२०

७२- प्रसाद : कामायनी, पृ० ६१

७३- ऋग्वेद : १।३१।११

७४- वही, १०।११०।८

७५- वही, ५।४१।१६

७६- अथर्ववेद : ८।६।१३

७७- वही : ५।३।७

७८- प्रसाद : कामायनी, पृ० ८३

७९- ऐतरेय ब्राह्मण : ३।३।३३